[2018] 3 उम. नि. प. 256

पंकज जैन

बनाम

भारत संघ और एक अन्य

23 फरवरी, 2018

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 88 – हाजिरी के लिए बंधपत्र स्वीकार करने की न्यायालय की शक्ति – न्यायालय को प्रदत्त बंधपत्र स्वीकार करके अभियुक्त को रिहा करने की शक्ति अभियुक्त की उस न्यायालय या ऐसे किसी अन्य न्यायालय में, जहां मामला अंतरित किया जा सकता है, हाजिरी सुकर बनाने के लिए है, इसलिए, धारा 88 में प्रयुक्त "मे" (सकता है) शब्द न्यायालय को इस संबंध में विवेकाधिकार प्रदान करता है कि वह न्यायालय में हाजिर होने वाले अभियुक्त व्यक्ति से बंधपत्र स्वीकार करे अथवा नहीं ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 88 – अभियुक्त को बंधपत्र पर रिहा करने की शक्ति – जब किसी अभियुक्त के विरुद्ध गैर-जमानतीय वारंट जारी कर दिया गया हो और उसके विरुद्ध धारा 82 तथा धारा 83 के अधीन कार्यवाहियां संस्थित कर दी गईं हों तो वह न्यायालय में हाजिर होने अथवा न होने के संबंध में स्वतंत्र कर्ता नहीं रह जाता है, इसलिए वह धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके रिहा किए जाने का हकदार नहीं होगा ।

प्रस्तुत मामले में, नोएडा, ग्रेटर नोएडा और यमुना एक्सप्रेस वे प्राधिकरणों के तत्कालीन मुख्य इंजीनियर के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी और अनेक अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध, जिसमें अपीलार्थी भी है, भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख, 409, 420, 466, 467, 469 और 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(घ) के अधीन केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में एक आरोपपत्र प्रस्तुत किया गया था । विचारण न्यायालय ने संज्ञान लिया और अभियुक्तों को हाजिर होने के लिए समन किया । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया । उच्च न्यायालय द्वारा उस आवेदन का इस निदेश के साथ अंतिम रूप से निपटारा कर दिया कि यदि आवेदक

दो सप्ताह के भीतर निचले न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है और अभ्यर्पण करता है तथा जमानत के लिए आवेदन करता है तो उसके जमानत आवेदन पर विचार किया जाएगा और उसे विनिश्चित किया जाएगा । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के इस निर्णय के विरुद्ध विशेष इजाजत याचिका फाइल की, जो कि इस न्यायालय द्वारा नियमित जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए इस कारण खारिज कर दी गई क्योंकि वह वापस ले ली गई थी । इसके पश्चात् एक अनुपूरक आरोपपत्र फाइल किया गया था, जिसके आधार पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख, 420, 468, 471 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(घ) के अधीन संज्ञान लेते हुए संज्ञान आदेश पारित किया गया था । अपीलार्थी द्वारा पुनः उच्च न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया, जिसमें अनुपूरक आरोपपत्र के अनुसरण में दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने की प्रार्थना की गई थी । उच्च न्यायालय ने यह निदेश देते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन का निपटारा कर दिया कि यदि आवेदक दो सप्ताह के भीतर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के समक्ष हाजिर होता है और अभ्यर्पण करता है तथा जमानत के लिए आवेदन करता है तो यह प्रत्याशा की जाती है कि उसका निपटारा विधि के अनुसार शीघ्रतापूर्वक कर दिया जाएगा । इसके अलावा यह निदेश दिया गया कि इसी बीच दो सप्ताह की अवधि के लिए गैर-जमानतीय वारंट के प्रभाव को आस्थगित रखा जाएगा । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित महसूस करते हुए पुनः विशेष इजाजत याचिका फाइल की, जिसका निपटारा इस न्यायालय द्वारा याची (अपीलार्थी) को केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के समक्ष नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए दो सप्ताह का अतिरिक्त समय प्रदान करते हुए और विचारण न्यायालय को यह निदेश देते हुए कर दिया गया कि वह जमानत संबंधी उक्त आवेदन पर तुरंत विचार करे । इस मामले पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही आरंभ की गई । न्यायालय ने यह अवेक्षा की कि अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त व्यक्ति उपस्थित नहीं था । न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध गैर-जमानतीय वारंट और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 की आदेशिका जारी करने का आदेश जारी किया । उसी दिन, इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश की अवेक्षा करते हुए, विशेष न्यायाधीश ने अपीलार्थी के विरुद्ध किए गए आदेशों पर इस न्यायालय के आदेश के अनुसार दो सप्ताह

की अवधि के लिए रोक लगा दी । अपीलार्थी ने इसके पश्चात् इस न्यायालय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन यह दलील देते हुए रिट याचिका फाइल की कि याची (अपीलार्थी) को, जिसे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था, केवल अभ्यर्पण करना है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र देना है । इस न्यायालय से इस आशय के निदेश की ईप्सा की गई थी । इस न्यायालय ने अपने पूर्ववर्ती आदेश की अवेक्षा करते हुए रिट याचिका का निपटारा कर दिया । इस आदेश के पश्चात् अपीलार्थी केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष हाजिर हुआ और तारीख 7 दिसम्बर, 2017 को एक आवेदन प्रस्तुत किया कि उसे बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात किया जाए । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा उपर्युक्त आवेदन नामंजूर कर दिया गया था । इस निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी ने एक अन्य आवेदन फाइल किया जो कि नामंजूर कर दिया गया । आवेदक ने विशेष इजाजत याचिका फाइल की, जिसका निपटारा यह मत व्यक्त करते हुए कर दिया गया था कि चूंकि आक्षेपित आदेश केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया है इसलिए याची के लिए यह उचित होगा कि वह उच्च न्यायालय में समावेदन करके उस आदेश को चुनौती दे । इसके पश्चात्, याची-अपीलार्थी ने रिट याचिका फाइल की और इसमें भी याची-अपीलार्थी ने धारा 88 की शक्तिमत्ता को चुनौती देने तथा विचारण न्यायालय के आदेश को अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण की रिट की ईप्सा की । यह रिट याचिका उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा खारिज कर दी गई है और इस निर्णय के विरुद्ध यह अपील फाइल की गई है । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का तद्नुसार निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत अपील में जिस मुख्य प्रश्न का उत्तर दिए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या इस आधार पर कि अपीलार्थी को अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था, न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके उसे रिहा करना आबद्धकर था या न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके उसे रिहा करने के लिए फाइल किए गए आवेदन को नामंजूर करके धारा 88 के अधीन अपनी अधिकारिता का सही प्रयोग किया था । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 एक ऐसा उपबंध है जो कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 6 "हाजिर होने को विवश करने के लिए आदेशिकाएं" में अंतर्विष्ट है ।

अध्याय 6 चार भागों में विभाजित है – क. समन; ख. गिरफ्तारी का वारंट; ग. उद्घोषणा और कुर्की; और घ. आदेशिकाओं संबंधी अन्य नियम । सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि धारा 8 में प्रयुक्त "may" शब्द का अर्थ क्या था । यद्यपि "मे" शब्द के साधारण प्रयोग से विवेकाधिकार विवक्षित होता है किन्तु जब "मे" शब्द के साथ किसी प्राधिकारी या न्यायालय पर कर्तव्य संयोजित किया जाता है तब इसे 'शैल' का अर्थ दिया गया है जो कि किसी प्राधिकारी या न्यायालय पर बाध्यकर होता है । "मे" शब्द के प्रयोग में कर्तव्य जुड़ा हुआ है अथवा नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर किसी विशिष्ट कानून की कानूनी स्कीम से ही दिए जाने की आवश्यकता है । धारा 88 में प्रयुक्त "मे" शब्द न्यायालय को इस संबंध में विवेकाधिकार प्रदान करता है कि वह न्यायालय में हाजिर होने वाले अभियुक्त व्यक्ति से बंधपत्र स्वीकार करे अथवा नहीं । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय, दोनों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग न करने के लिए अकाट्य कारण दिए हैं । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं है कि अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके रिहा किए जाने का हकदार नहीं था । अतः, न्यायालय उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई त्रुटि नहीं पाता है । (पैरा 13, 14, 15, 17 और 31)

दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 ऐसे किसी व्यक्ति को, जो न्यायालय में उपस्थित है, कोई अधिकार प्रदत्त नहीं करती । न्यायालय को दी गई वैवेकिक शक्ति ऐसे व्यक्ति की उस न्यायालय में या ऐसे किसी अन्य न्यायालय में जहां मामला विचारण के लिए अंतरित किया जा सकता है, उपस्थिति सुनिश्चित करने के प्रयोजन और उद्देश्य के लिए है । न्यायालय को धारा 88 के अधीन दिया गया विवेकाधिकार ऐसे किसी व्यक्ति को, जो न्यायालय में उपस्थित है, कोई अधिकार प्रदत्त नहीं करता बल्कि यह न्यायालय को दी गई ऐसी शक्ति है जिससे कि उसकी उपस्थिति सुकर बनाई जा सके, जिससे स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि "मे" शब्द का प्रयोग वैवेकिक है और यह न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह जब भी स्थिति की मांग हो, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे । इसके अलावा, यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि धारा 88 में प्रयुक्त "कोई व्यक्ति" शब्दों का व्यापक अर्थान्वयन किया जाना है, जिसके अंतर्गत ऐसे व्यक्ति

शामिल हो सकते हैं जो मामले में अभियुक्त भी नहीं है और वे साक्षी के रूप में हाजिर हुए हैं । (पैरा 23)

प्रस्तुत मामला ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्त एक मुक्त अभिकर्ता था कि वह हाजिर हो अथवा नहीं । उसके विरुद्ध पहले ही गैर-जमानतीय वारंट जारी किए गए थे तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 के अधीन कार्यवाही भी संस्थित की गई थी । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, वह धारा 88 के फायदे का हकदार नहीं था । (पैरा 29)

इस न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर करने या उससे इनकार करने के संबंध में यथा-अधिकथित प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है जो कि सुस्थापित हैं । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा अधिकथित किया गया है, जमानत मंजूर करने संबंधी विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से और मानवीय रीति में तथा सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए । (पैरा 33)

प्रस्तुत कार्यवाही में दो ऐसे कारण हैं जिसके कारण न्यायालय अपीलार्थी के इस अनुरोध को स्वीकार करने में असमर्थ है कि अपीलार्थी की जमानत के मामले पर विचार किया जाए । प्रथमतः, इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती दो अवसरों पर अपीलार्थी को विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता प्रदान की थी और अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया है और उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके उसे रिहा करने पर जोर दिया है । द्वितीयतः, इस मामले के तथ्यों के आधार पर, सर्वप्रथम विचारण न्यायालय को अपीलार्थी की जमानत मंजूर करने संबंधी प्रार्थना पर विचार करना है । अतः, अपीलार्थी जैसे ही कोई जमानत आवेदन फाइल करता है, विचारण न्यायालय द्वारा उस पर निःशक्तता संबंधी उसके दावे और अन्य सुसंगत आधारों पर विचार करने के पश्चात्, जिन पर अपीलार्थी द्वारा जोर दिया जाता है या उसके समक्ष जोर दिया जा सकता है, तुरंत विचार किया जाएगा । (पैरा 35)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2018]	(2018) 3 एस. सी. सी. 22 : **दाताराम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य** ;	32

[2016] (2016) 3 आर. सी. आर. (दांडिक) 883 :
अरुण शर्मा बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ; 28

[2013] (2013) 6 एस. सी. सी. 573 :
केरल राज्य और अन्य बनाम **कंडथ डिस्टीलियरीज़** ; 22

[2006] (2006) 132 दिल्ली ला टाइम्स 692 :
संजय चतुर्वेदी बनाम **राज्य** ; 24

[2003] (2003) 109 दिल्ली ला टाइम्स 494 :
न्यायालय, स्वप्रेरणा से बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** ; 24

[2000] (2000) 2 पटना ला जर्नल रिपोर्ट्स 686 :
डा. आनन्द देव सिंह बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ; 26

[1970] (1970) 3 एस. सी. सी. 739 :
मधु लिमये और एक अन्य बनाम **वेद मूर्ति और अन्य** ; 27, 30

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1618 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **जोगेन्द्र सिंह** ; 18

[1963] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1088 :
रामजी मिस्सर और एक अन्य बनाम **बिहार राज्य** ; 18, 20

[1874-80] (1874-80) आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 43 :
जूलियस बनाम **लार्ड बिशप आफ आक्सफोर्ड** । 17

दांडिक अपीली अधिकारिता : 2018 की दांडिक अपील सं. 321.

2017 की रिट याचिका सं. 62167 में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 21 दिसम्बर, 2017 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री मुकुल रोहतगी, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सौरभ कृपाल, समीर रोहतगी, आशीष बतरा, वत्तन शर्मा, मनीष गुप्ता और निखिल जैन

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री मनिन्दर सिंह, अपर महासालिसिटर, आर. बालासुब्रमण्यम्, शेखर व्यास, आरती शर्मा, प्रभास बजाज, अक्षय अमृतांशु, अरुण पाठक और मुकेश कुमार मरोड़िया

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण – इजाजत दी जाती है ।

2. यह अपील इलाहाबाद उच्च न्यायालय के तारीख 21 दिसम्बर, 2017 के उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है जिसके द्वारा अपीलार्थी की ओर से फाइल की गई 2017 की रिट याचिका सं. 62167 खारिज कर दी गई थी । इस न्यायालय के निर्वचन के लिए जो प्रमुख मुद्दा उद्भूत हुआ है वह दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 88 की अंतर्वस्तु और अर्थान्वयन के संबंध में है । इससे पूर्व कि हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय का उल्लेख करें, अपीलार्थी के विरुद्ध दर्ज की गई दांडिक कार्यवाही से उद्भूत उस मुकदमेबाजी की श्रृंखला का उल्लेख करना आवश्यक है जो अपीलार्थी द्वारा भिन्न-भिन्न न्यायालयों में संस्थित की गई थी ।

3. भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख, 409, 420, 466, 467, 469 और 471 और भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(घ) के अधीन नोएडा, ग्रेटर नोएडा और यमुना एक्सप्रेस वे प्राधिकरणों के तत्कालीन मुख्य इंजीनियर यादव सिंह नामक व्यक्ति के विरुद्ध एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज की गई थी और अनेक अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध, जिसमें यादव सिंह और अपीलार्थी पंकज जैन भी है, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में तारीख 15 मार्च, 2016 का एक आरोपपत्र, जो कि 2016 का आरोपपत्र सं. 02 है, प्रस्तुत किया गया था । विचारण न्यायालय ने तारीख 29 मार्च, 2016 के आदेश द्वारा संज्ञान लिया और अभियुक्तों को तारीख 29 अप्रैल, 2016 को हाजिर होने के लिए समन किया । अपीलार्थी ने इलाहाबाद उच्च न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया, जो कि 2016 का आवेदन सं. 31090 है, जिसमें 2016 के विशेष मामला सं. 10 की संपूर्ण दांडिक कार्यवाही तथा तारीख 29 मार्च, 2016 के समन आदेश को अभिखंडित करने की प्रार्थना की गई । उच्च न्यायालय द्वारा उस आवेदन का तारीख 17 अक्तूबर, 2016 के आदेश द्वारा इस निदेश के साथ अंतिम रूप से निपटारा कर दिया कि यदि आवेदक दो सप्ताह के भीतर निचले न्यायालय के समक्ष उपस्थित होता है और अभ्यर्पण करता है तथा जमानत के लिए आवेदन करता है तो उसके जमानत आवेदन पर विचार किया जाएगा और उसे विनिश्चित किया जाएगा । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के तारीख 17 अक्तूबर, 2016 के निर्णय के विरुद्ध 2016

की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 10191 फाइल की, जो कि इस न्यायालय द्वारा नियमित जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता प्रदान करते हुए इस कारण खारिज कर दी गई क्योंकि वह तारीख 16 जनवरी, 2017 को वापस ले ली गई थी ।

4. तारीख 31 मई, 2017 को एक अनुपूरक आरोपपत्र फाइल किया गया था, जिसके आधार पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी और अन्य अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 120ख, 420, 468, 471 तथा भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 13(2) और 13(1)(घ) के अधीन संज्ञान लेते हुए तारीख 7 जून, 2017 का संज्ञान आदेश पारित किया गया था । अपीलार्थी द्वारा पुनः उच्च न्यायालय में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन एक आवेदन फाइल किया गया, जो कि 2017 का आवेदन सं. 18849 है, जिसमें तारीख 31 मई, 2017 के अनुपूरक आरोपपत्र के अनुसरण में दांडिक कार्यवाही अभिखंडित करने की प्रार्थना की गई थी । उच्च न्यायालय ने तारीख 6 जुलाई, 2017 के अपने आदेश द्वारा यह निदेश देते हुए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन आवेदन का निपटारा कर दिया कि यदि आवेदक दो सप्ताह के भीतर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के समक्ष हाजिर होता है और अभ्यर्पण करता है तथा जमानत के लिए आवेदन करता है तो यह प्रत्याशा की जाती है कि उसका निपटारा विधि के अनुसार शीघ्रतापूर्वक कर दिया जाएगा । इसके अलावा यह निदेश दिया गया कि इसी बीच दो सप्ताह की अवधि के लिए गैर-जमानतीय वारंट के प्रभाव को आस्थगित रखा जाएगा । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के तारीख 6 जुलाई, 2017 के आदेश से व्यथित महसूस करते हुए पुनः 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7749 फाइल की, जिसका निपटारा इस न्यायालय द्वारा तारीख 24 नवम्बर, 2017 को याची (अपीलार्थी) को केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के समक्ष नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए दो सप्ताह का अतिरिक्त समय प्रदान करते हुए और विचारण न्यायालय को यह निदेश देते हुए कर दिया गया कि वह जमानत संबंधी उक्त आवेदन पर तुरंत विचार करे ।

5. तारीख 27 नवम्बर, 2017 को इस मामले पर केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा कार्यवाही आरंभ की गई । न्यायालय ने यह अवेक्षा की कि अपीलार्थी और एक अन्य अभियुक्त व्यक्ति उपस्थित नहीं था । न्यायालय ने अपीलार्थी के विरुद्ध गैर-जमानतीय वारंट और दंड

प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 की आदेशिका जारी करने का आदेश जारी किया । उसी दिन, इस न्यायालय द्वारा 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7749 में तारीख 24 नवम्बर, 2017 को पारित आदेश की अवेक्षा करते हुए, विद्वान् विशेष न्यायाधीश ने अपीलार्थी के विरुद्ध किए गए आदेशों पर इस न्यायालय के आदेश के अनुसार दो सप्ताह की अवधि के लिए रोक लगा दी । अपीलार्थी ने इसके पश्चात् इस न्यायालय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन यह दलील देते हुए 2017 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 199 फाइल की कि याची (अपीलार्थी) को, जिसे केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो द्वारा अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था, केवल अभ्यर्पण करना है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र देना है । इस न्यायालय से इस आशय के निदेश की ईप्सा की गई थी । इस न्यायालय ने अपने तारीख 6 दिसम्बर, 2017 के आदेश द्वारा इस न्यायालय के तारीख 24 नवम्बर, 2017 के पूर्ववर्ती आदेश की अवेक्षा करते हुए निम्नलिखित आदेश सहित रिट याचिका का निपटारा कर दिया :–

> "हमारे तारीख 24 नवम्बर, 2017 के उपर्युक्त आदेशों को ध्यान में रखते हुए, हमारी यह राय है कि याची को प्रथमतः विचारण न्यायालय के समक्ष हाजिर होना चाहिए, जो कि पहले से तैयार की गई कार्रवाई का अनुक्रम है । याची दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन आवेदन फाइल करने या जमानत आवेदन फाइल करने के लिए स्वतंत्र होगा, जैसी कि उसे सलाह दी जाए । याची अपनी दलील के समर्थन में ऊपर उल्लिखित निर्णयों का अवलंब लेने के लिए भी स्वतंत्र होगा । विचारण न्यायालय को ही मामले की परीक्षा करनी है और उसके संबंध में अपनी राय बनानी है । जहां तक इस न्यायालय का संबंध है, गुणागुण के संबंध में कोई राय अभिव्यक्त नहीं की जाती है ।
>
> श्री मुकुल रोहतगी, विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह निवेदन किया है कि याची, जो कि आज न्यायालय में उपस्थित है, कल, तारीख 7 दिसम्बर, 2017 को अभ्यर्पण करेगा और विचारण न्यायालय के समक्ष हाजिर होगा । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल के इस निवेदन को नोट किया जाता है ।
>
> इस रिट याचिका का उपर्युक्त निबंधनों में निपटारा किया जाता है ।"

6. इस न्यायालय के तारीख 6 दिसम्बर, 2017 के आदेश के पश्चात्, अपीलार्थी केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के न्यायालय के समक्ष हाजिर हुआ और तारीख 7 दिसम्बर, 2017 का आवेदन प्रस्तुत किया । उस आवेदन में, निम्नलिखित प्रार्थना की गई है :–

> "(क) यह कि यह माननीय न्यायालय अपीलार्थी पंकज जैन द्वारा, जो कि उच्चतम न्यायालय द्वारा 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7749 में पारित तारीख 24 नवम्बर, 2017 के आदेश के साथ पठित 2017 की रिट याचिका (दांडिक) सं. 199 में पारित तारीख 6 दिसम्बर, 2017 के आदेश द्वारा प्रदान की गई स्वतंत्रता के अनुसरण में इस माननीय न्यायालय के समक्ष स्वेच्छया से उपस्थित है, किए गए इस आवेदन पर कार्यवाही करे और उसका निपटारा करे तथा उसे किसी कारागार में भेजे बिना आर. सी. सं. आर. सी./डी. एस. टा./2015/ए/0004/सी. बी. आई/.एस. टी. एफ./ डी. एल. आई., तारीख 30 जुलाई, 2015/मामला सं. 10ए/2016 और 3/2017 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अनुसार ऐसा बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात करे, जो उपयुक्त समझा जाए ;
>
> (ख) ऐसा कोई अन्य या अतिरिक्त आदेश मंजूर किया जाए, जो माननीय न्यायालय मामले के तथ्यों और उसकी परिस्थितियों में और न्याय के हित में उचित समझे ।"

7. केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा तारीख 7 दिसम्बर, 2017 का उपर्युक्त आवेदन नामंजूर कर दिया गया था । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश ने यह मत व्यक्त किया कि धारा 88 में प्रयुक्त 'may' (कर सकता है) शब्द से यह द्योतित होता है कि धारा 88 आज्ञापक नहीं है और यह एक न्यायिक विवेकाधिकार का विषय है । विशेष न्यायाधीश ने अपीलार्थी के विरुद्ध लगाए गए अभिकथनों की अवेक्षा करने के पश्चात् 2017 का आवेदन सं. 14ख नामंजूर कर दिया । तारीख 7 दिसम्बर, 2017 के निर्णय से व्यथित होकर अपीलार्थी द्वारा 2017 का एक अन्य आवेदन सं. 101ख फाइल किया गया था जो कि नामंजूर कर दिया गया था । आवेदक ने 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 9764 फाइल की, जिसका निपटारा तारीख 15 दिसम्बर, 2017 के उसके आदेश द्वारा यह मत व्यक्त करते हुए कर दिया गया था कि चूंकि आक्षेपित आदेश केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित किया गया है इसलिए याची के लिए यह उचित होगा कि वह उच्च न्यायालय में

समावेदन करके उस आदेश को चुनौती दे । तारीख 15 दिसम्बर, 2017 के आदेश के पश्चात्, याची-अपीलार्थी ने 2017 की रिट याचिका सं. 62167 फाइल की और इसमें भी याची-अपीलार्थी ने धारा 88 की शक्तिमत्ता को चुनौती देने तथा विचारण न्यायालय के तारीख 7 दिसम्बर, 2017 के आदेश को अभिखंडित करते हुए उत्प्रेषण की रिट की ईप्सा की । उस रिट याचिका में निम्नलिखित प्रार्थनाएं की गई हैं :–

> "(क) दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 में 'may' (कर सकता है) शब्द का उपर्युक्त संदर्भ में प्रयोग किया जाना असांविधानिक, स्पष्टतः मनमाना, अयुक्तियुक्त और भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 में गारंटीकृत मूल अधिकारों के अधिकारातीत घोषित करते हुए समुचित रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए या अनुकल्पतः धारा 88 को भारत के संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 21 के दोष के आधार पर असांविधानिकता से बचाने के लिए इस संदर्भ में उसके क्षेत्र की व्याख्या, विवेचना और वर्णन करके उसके प्रभाव को कम करके पढ़ा जाए ।
>
> (ख) विचारण न्यायालय, अर्थात्, केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के भ्रष्टाचार-निरोधी मामलों के लिए विशेष न्यायाधीश, गाजियाबाद द्वारा पारित तारीख 7 दिसम्बर, 2017 के आक्षेपित आदेश/आदेशों को अपास्त करते हुए, याची को आर. सी. सं. आर. सी./डी. एस. टी./ 2015/ए/0004/सी. बी. आई/.एस. टी. एफ./डी. एल. आई., तारीख 30 जुलाई, 2015 में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन उक्त विचारण न्यायालय के समाधानप्रद रूप में अपना बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए अनुज्ञात करते हुए उसे स्वतंत्रता प्रदान करने के पारिणामिक अनुतोष सहित उत्प्रेषण की रिट या कोई अन्य समुचित रिट, आदेश या निदेश जारी किया जाए ।
>
> (ग) माननीय न्यायालय द्वारा ऐसा कोई अतिरिक्त आदेश भी, जो न्याय के हित में हो, पारित किया जा सकता है ।"

8. यह रिट याचिका उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा तारीख 21 दिसम्बर, 2017 के उसके निर्णय और आदेश द्वारा खारिज कर दी गई है और इस निर्णय के विरुद्ध यह अपील फाइल की गई है ।

9. हमने अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री मुकुल रोहतगी और प्रत्यर्थी की ओर से उपस्थित होने वाले

श्री मनिन्दर सिंह, भारत के अपर महासालिसिटर की सुनवाई की है ।

10. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री मुकुल रोहतगी ने यह दलील दी है कि चूंकि अपीलार्थी को जब वह केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के समक्ष अन्वेषण के दौरान हाजिर हुआ, गिरफ्तार नहीं किया गया है इसलिए न्यायालय के लिए यह आबद्धकर था कि वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करता और अपीलार्थी को तुरंत रिहा करता । उसने यह दलील दी कि विशेष न्यायाधीश के न्यायालय ने धारा 88 के अधीन आवेदन नामंजूर करके त्रुटि कारित की है । इसके अलावा, यह दलील दी गई है कि अपीलार्थी द्वारा जमानत आवेदन फाइल नहीं किया गया था चूंकि उन सभी व्यक्तियों को, जो न्यायालय के समक्ष उपस्थित हुए थे, अभिरक्षा में ले लिया गया था और उनके जमानत संबंधी आवेदन नामंजूर कर दिए गए थे । विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने यह दलील दी कि यद्यपि धारा 88 में 'may' शब्द का प्रयोग किया गया है किन्तु 'may' शब्द का पठन 'shall' के रूप में करना होगा जिससे कि न्यायालय पर, उन व्यक्तियों को, जो अपनी इच्छानुसार न्यायालय में हाजिर हुए हैं, बंधपत्र देने पर रिहा करने की बाध्यता डाली जा सके । उन्होंने आगे यह दलील दी कि उच्च न्यायालय ने यह मत व्यक्त करके भूल कारित की है कि याची ने जब 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7749 फाइल की थी तो उसने इस न्यायालय से तात्विक तथ्यों को छिपाया था । यह दलील दी गई है कि 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7749 में समस्त तथ्यों का उल्लेख किया गया था और उच्च न्यायालय की यह मताभिव्यक्ति सही नहीं है कि किसी तथ्य को छिपाया गया था ।

11. प्रत्यर्थी की ओर से श्री मनिन्दर सिंह, भारत के विद्वान् अपर महासालिसिटर ने अपीलार्थी की दलील का खंडन करते हुए यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 का निर्वचन सही रूप में किया गया है । यह दलील दी गई है कि विशेष न्यायाधीश द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध न केवल समन जारी किए गए थे बल्कि गैर-जमानतीय वारंट और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और धारा 83 के अधीन कार्यवाहियां भी संस्थित की गईं थीं । अतः, वह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र प्रस्तुत करने पर रिहा किए जाने की कृपा का हकदार नहीं था । उन्होंने आगे यह दलील दी कि धारा 88 के अधीन न्यायालय को बंधपत्र स्वीकार करके किसी व्यक्ति को रिहा करने की वैवेकिक शक्ति प्राप्त है, जिसका ऐसे अभियुक्त द्वारा अधिकार-स्वरूप दावा

नहीं किया जा सकता, जिसे पहले ही समन जारी किया जा चुका है और जिसके विरुद्ध गैर-जमानतीय वारंट जारी किया गया है । इसके अलावा, यह दलील दी गई है कि यद्यपि याची-अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन विभिन्न आवेदन तथा इस न्यायालय के समक्ष विशेष इजाजत याचिकाएं फाइल की हैं तथापि, उसने अब तक केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायालय के समक्ष कोई जमानत आवेदन फाइल नहीं किया है । उन्होंने यह दलील दी कि यद्यपि अपीलार्थी द्वारा तारीख 16 जनवरी, 2017 को, जब 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 10190 खारिज की गई थी तथा तारीख 24 नवम्बर, 2017 को, जब 2017 की विशेष इजाजत याचिका (दांडिक) सं. 7749 का निपटारा किया गया था, न्यायालय के समक्ष नियमित जमानत के लिए आवेदन करने के लिए इस न्यायालय से स्वतंत्रता प्राप्त कर ली गई थी तथापि, ऐसी स्वतंत्रता प्राप्त करने के बावजूद अपीलार्थी द्वारा जमानत के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया गया था ।

12. हमने पक्षकारों के विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेलों की दलीलों पर विचार किया है और अभिलेख का परिशीलन किया है ।

13. प्रस्तुत अपील में जिस मुख्य प्रश्न का उत्तर दिए जाने की आवश्यकता है, वह यह है कि क्या इस आधार पर कि अपीलार्थी को अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था, न्यायालय के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके उसे रिहा करना आबद्धकर था या न्यायालय ने अपीलार्थी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके उसे रिहा करने के लिए फाइल किए गए आवेदन को नामंजूर करके धारा 88 के अधीन अपनी अधिकारिता का सही प्रयोग किया था ।

14. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 एक ऐसा उपबंध है जो कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अध्याय 6 "हाजिर होने को विवश करने के लिए आदेशिकाएं" में अंतर्विष्ट है । अध्याय 6 चार भागों में विभाजित है – क. समन; ख. गिरफ्तारी का वारंट; ग. उद्घोषणा और कुर्की; और घ. आदेशिकाओं संबंधी अन्य नियम । धारा 88 में निम्नलिखित रूप में उपबंध किया गया है :–

> "**88. हाजिरी के लिए बंधपत्र लेने की शक्ति** – जब कोई व्यक्ति, जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए किसी न्यायालय का

पीठासीन अधिकारी समन या वारंट जारी करने के लिए सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित है तब वह अधिकारी उस व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह उस न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसको मामला विचारण के लिए अंतरित किया जाता है, अपनी हाजिरी के लिए बंधपत्र, प्रतिभूओं सहित या रहित, निष्पादित करे ।"

15. हमारे लिए सर्वप्रथम इस बात पर विचार करना आवश्यक है कि धारा 8 में प्रयुक्त 'may' शब्द का अर्थ क्या था ।

16. न्यायमूर्ति जी. पी. सिंह ने "प्रिंसीपल्स आफ स्टेट्यूटरी इंटरप्रटेशन", 14वां संस्करण में समर्थकारी शब्द 'may' पर विचार करते समय निर्वचन के निम्नलिखित सिद्धांतों को स्पष्ट किया :–

"(ट) समर्थकारी शब्द, उदाहरणार्थ, 'मे' (सकेगा), 'इट शैल बी लाफुल' (यह विधिपूर्ण होगा), 'शैल हैव पावर' (शक्ति होगी) । कर्तव्य से जुड़ी शक्ति ।

साधारणतया, 'मे' और 'इट शैल बी लाफुल' शब्द बाध्यकारी शब्द नहीं होते हैं । ये समर्थकारी शब्द हैं और ये केवल क्षमता, शक्ति या प्राधिकार प्रदान करते हैं और इनसे विवेकाधिकार विवक्षित होता है । इन दोनों शब्दों का प्रयोग कानून में यह उपदर्शित करने के लिए किया जाता है कि कोई ऐसा काम किया जा सकता है जो इससे पूर्व नहीं किया जा सका था । 'शैल हैव पावर' शब्दों का प्रयोग भी इसी विचार को द्योतित करता है ।"

17. यद्यपि "मे" शब्द के साधारण प्रयोग से विवेकाधिकार विवक्षित होता है किन्तु जब "मे" शब्द के साथ किसी प्राधिकारी या न्यायालय पर कर्तव्य संयोजित किया जाता है तब इसे "शैल" का अर्थ दिया गया है जो कि किसी प्राधिकारी या न्यायालय पर बाध्यकर होता है । "मे" शब्द के प्रयोग में कर्तव्य जुड़ा हुआ है अथवा नहीं, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उत्तर किसी विशिष्ट कानून की कानूनी स्कीम से ही दिए जाने की आवश्यकता है । लार्ड कैरन्स द्वारा **जूलियस** बनाम **लार्ड बिशप आफ आक्सफोर्ड**[1] वाले मामले में निर्वचन के सिद्धांतों को अधिकथित किया गया है जहां लार्ड कैरन्स ने कानूनी निर्वचन के सिद्धांतों को निम्नलिखित शब्दों में प्रतिपादित किया :–

---

[1] (1874-80) आल इंग्लैंड ला रिपोर्ट्स 43.

"किसी कार्य की प्रकृति में ऐसा कुछ हो सकता है जिसे करने की शक्ति प्राप्त हो, उस उद्देश्य में कुछ हो सकता है जिसके लिए वह किया जाना है, उन शर्तों में कुछ हो सकता है जिनके अधीन वह किया जाना है, उस व्यक्ति या उन व्यक्तियों के, जिनके फायदे के लिए शक्ति का प्रयोग किया जाना है, हक में ऐसा कुछ हो सकता है जिसमें शक्ति के साथ कोई कर्तव्य जुड़ा हो और वह शक्ति उसे उस व्यक्ति का, जिसे वह शक्ति दी जाती है, यह कर्तव्य बनाती है कि वह उस शक्ति का तब प्रयोग करे जब उसे ऐसा करने के लिए कहा जाए ।

जहां किसी लोक अधिकारी को, विनिर्दिष्ट रूप से इंगित ऐसे व्यक्तियों के फायदे के लिए प्रयोग किए जाने के प्रयोजनार्थ कोई शक्ति प्रदान की जाती है, जिनके संबंध में विधान-मंडल द्वारा उन शर्तों की परिभाषा दी जाती है जिन्हें पूरा करने पर वे उसका प्रयोग करने की अपेक्षा करने के हकदार होते हैं, वहां उस शक्ति का प्रयोग अवश्य ही किया जाना चाहिए और न्यायालय यह अपेक्षा करेगा कि उसका प्रयोग किया जाए ।

जब कभी शक्ति का उद्देश्य किसी विधिक अधिकार को प्रभावशील करना होता है तब समर्थकारी शब्दों का अर्थान्वयन अनिवार्य रूप में किया जाता है ।"

18. अपीलार्थी के विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल ने **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **जोगेन्द्र सिंह**[1] और **रामजी मिस्सर और एक अन्य** बनाम **बिहार राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णयों के प्रति निर्देश किया । **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **जोगेन्द्र सिंह** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने उत्तर प्रदेश अनुशासनिक कार्यवाही (प्रशासनिक अधिकरण) नियम, 1947 के नियम 4(2) में "मे" शब्द का प्रयोग किए जाने के संबंध में विचार किया । उपर्युक्त संबंध में, पैरा 8 में निम्न प्रकार कथन किया गया है :–

"8. नियम 4(2) राजपत्रित सरकारी सेवकों के वर्ग के संबंध में है और इसमें उन्हें राज्यपाल को यह अनुरोध करने का अधिकार प्रदान किया गया है कि उपनियम (1) के खंड (क) से खंड (घ) में विनिर्दिष्ट विषयों की बाबत उनके मामले अधिकरण को निर्देशित किए

---

[1] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1618.

[2] ए. आई. आर. 1963 एस. सी. 1088.

जाने चाहिएं । हमारे विनिश्चयार्थ प्रश्न यह है कि क्या नियम 4(1) में 'मे' (सकेगा) शब्द की तरह, जो कि राज्यपाल को विवेकाधिकार प्रदत्त करता है, उपनियम (2) में प्रयुक्त 'मे' शब्द उसे विवेकाधिकार प्रदान करता है या उपनियम (2) में प्रयुक्त 'मे' शब्द से वास्तव में 'शैल' (करेगा) या 'मस्ट' (अवश्य करना चाहिए) अभिप्रेत है ? इस संबंध में कोई संदेह नहीं है कि साधारणतया 'मे' शब्द से 'मस्ट' या 'शैल' अभिप्रेत नहीं होता है । किन्तु यह सुस्थापित है कि 'मे' शब्द से संदर्भ के प्रकाश में 'मस्ट' या 'शैल' अभिप्रेत हो सकता है । यह भी स्पष्ट है कि जहां किसी लोक प्राधिकारी को कोई ऐसा विवेकाधिकार प्रदान किया जाता है जिससे कोई बाध्यता संयोजित होती है तो 'मे' शब्द का, जो विवेकाधिकार द्योतित करता है, अर्थान्वयन आदेश के अर्थ में किया जाना चाहिए । कभी-कभी, विधान-मंडल, उस प्राधिकारी की, जिसे शक्ति और बाध्यता प्रदत्त या अधिरोपित की जानी आशयित है, उच्च हैसियत के सम्मानस्वरूप 'मे' शब्द का प्रयोग करता है । प्रस्तुत मामले में, संदर्भ ही विनिश्चायक है । यदि उक्त नियम में 'मे' शब्द का अर्थान्वयन वही किया जाता है जो कि उपनियम (1) में उसका है तो नियम 4(2) का संपूर्ण प्रयोजन ही विफल हो जाएगा । यह इस कारण है कि राजपत्रित सरकारी सेवकों के संबंध में राज्यपाल को यह विवेकाधिकार पहले ही प्रदान किया गया था कि उनके मामलों को अधिकरण को निर्देशित किया जाए, इसलिए नियम बनाने वाला प्राधिकारी उनकी बाबत ऐसा विशेष उपबंध करना चाहता था जो कि नियम 4(1) और नियम 4(2) के अधीन आने वाले अन्य सरकारी सेवकों के लिए विहित नियम से सुभिन्न हो अन्यथा नियम 4(2) पूर्णतः अनावश्यक हो जाएगा । दूसरे शब्दों में, नियम 4(2) को अधिनियमित करने का साधारण और सुस्पष्ट उद्देश्य राजपत्रित सरकारी सेवकों को यह विकल्प प्रदान करना है कि वह राज्यपाल को यह अनुरोध कर सकें कि उनके मामलों का विचारण किसी अधिकरण द्वारा न कि अन्यथा किया जाना चाहिए । संभवतः नियम बनाने वाले प्राधिकारी ने यह सोचा कि राजपत्रित सरकारी सेवकों की प्रास्थिति को ध्यान में रखते हुए उन्हें ऐसा विकल्प प्रदान करना विधिसम्मत होगा । अतः, हमें उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए इस मत को स्वीकार करने में कोई कठिनाई महसूस नहीं हो रही है कि नियम 4(2) राज्यपाल पर यह बाध्यता अधिरोपित करता है कि वह राजपत्रित सरकारी सेवक द्वारा

की गई इस प्रार्थना को स्वीकार करे कि उसका मामला नियमों के अधीन अधिकरण को निर्देशित किया जाना चाहिए । ऐसा अनुरोध, स्वीकृत रूप से प्रत्यर्थी द्वारा किया गया था और उसे स्वीकार नहीं किया गया है । अतः, हमारा यह समाधान हो गया है कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी के मामले को नियमों के अधीन अधिकरण को निर्देशित करते हुए अपीलार्थी द्वारा प्रत्यर्थी के विरुद्ध की जाने वाली प्रस्तावित कार्यवाहियों को अभिखंडित करके सही किया था ।"

19. इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि नियम 4(2) में 'मे' शब्द का प्रयोग एक बाध्यता प्रदत्त करता है और सरकारी सेवकों को राज्यपाल को अनुरोध करने का अधिकार देता है । इस प्रकार, उपर्युक्त मामले में, 'मे' शब्द के साथ कर्तव्य जुड़ा था, जिसे बाध्यकारी अभिनिर्धारित किया गया था ।

20. **रामजी मिस्सर और एक अन्य** बनाम **बिहार राज्य** (उपर्युक्त) वाले मामले में, इस न्यायालय ने पुनः अपराधी परिवीक्षा अधिनियम, 1958 की धारा 11(1) और धारा 6(2) पर विचार किया । इस न्यायालय ने पैरा 16 में निम्नलिखित रूप में अधिकथित किया :–

"16. यद्यपि 'मे' शब्द से प्रायिक वाक्यांश 'इट शैल बी लाफुल' के अर्थों में मात्र एक समर्थकारी या अनुज्ञात्मक शक्ति द्योतित हो सकती है तथापि, वह इस प्रकार अर्थान्वयन किए जाने के लिए भी सक्षम है कि उसके द्वारा एक बाध्यकारी कर्तव्य के प्रति निर्देश किया गया है विशेषकर तब जब वह किसी न्यायालय या अन्य न्यायिक प्राधिकारी को प्रदत्त किसी शक्ति के प्रति निर्देश करता है । जैसा कि मैक्सवेल आन स्टेट्यूट में मताभिव्यक्ति की गई है :–

> 'ऐसे कानूनों से, जो व्यक्तियों को अन्य व्यक्तियों के फायदे के लिए कार्य करने के लिए प्राधिकृत करते हैं या जैसा कि उनमें कभी-कभी लोक भलाई या न्याय को अग्रसर करने के लिए कहा जाता है, प्रायः तब संविवाद उत्पन्न हुए हैं जब साधारणतया उनमें समर्थकारी न कि आज्ञापक निबंधनों में प्राधिकार प्रदत्त किया जाता है । ऐसा प्रतीत होता है कि कानूनों में यह अधिनियमित करते समय कि वे ऐसे कार्य कर सकेंगे (may), करेंगे (shall) यदि वे उपयुक्त समझें (if they think fit) या उन्हें यह शक्ति होगी (shall have power) या यह कि

> उनके लिए यह विधिपूर्ण होगा (it shall be lawful), मात्र अनुज्ञा की भाषा का प्रयोग किया जाता है किन्तु इसे इतना अधिक विनिश्चित किया गया है कि अब यह स्वयंसिद्ध हो गया है कि ऐसे मामलों में ऐसी अभिव्यक्तियों का कम से कम बाध्यकारी बल हो सकता है ।"

21. इस न्यायालय ने यह अवेक्षा की है कि 1958 के अधिनियम में न्यायालय द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग करने के लिए दिशानिर्देशों के रूप में कतिपय कसौटियां अधिकथित की गई हैं । न्यायालय ने इस निवेदन को नामंजूर कर दिया कि अपील न्यायालय को धारा 11 के अधीन शक्ति का प्रयोग करने के लिए अनियंत्रित विवेकाधिकार प्राप्त है । उपर्युक्त मामला एक ऐसा मामला भी था जहां न्यायालय को दिए गए विवेकाधिकार का प्रयोग कतिपय दिशानिर्देशों और कसौटियों के अधीन किया जाना था, जो कि विवेकाधिकार का एक ऐसा मामला था, जिसके साथ कर्तव्य जुड़ा हुआ था ।

22. इस न्यायालय ने **केरल राज्य और अन्य** बनाम **कंडथ डिस्टीलियरीज़**[1] वाले मामले में केरल आबकारी अधिनियम, 1902 में "मे" अभिव्यक्ति के प्रयोग पर विचार किया । न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यह अभिव्यक्ति आयुक्त को वैवेकिक शक्ति प्रदत्त करती है और इस शक्ति के साथ कर्तव्य जुड़ा हुआ नहीं है । पैरा 29 में निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की गई है :–

> "29. धारा 14 में 'आयुक्त, 'सरकार के अनुमोदन से' कर सकेगा' अभिव्यक्ति का प्रयोग किया गया है, इसी प्रकार नियम 4 में भी 'आयुक्त, 'यदि उसका समाधान हो गया है', 'ऐसी जांच करने के पश्चात्, जो वह आवश्यक समझे', अनुज्ञप्ति जारी कर सकेगा' । धारा 14 और नियम 4 में प्रयुक्त ये सभी अभिव्यक्तियां आयुक्त तथा राज्य सरकार को वैवेकिक शक्तियां प्रदत्त करती हैं न कि ऐसी वैवेकिक शक्ति, जिसके साथ कर्तव्य संयोजित है ....."

23. दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 ऐसे किसी व्यक्ति को, जो न्यायालय में उपस्थित है, कोई अधिकार प्रदत्त नहीं करती । न्यायालय को दी गई वैवेकिक शक्ति ऐसे व्यक्ति की उस न्यायालय में या ऐसे किसी अन्य न्यायालय ,में जहां मामला विचारण के लिए अंतरित किया जा सकता

---

[1] (2013) 6 एस. सी. सी. 573.

है, उपस्थिति सुनिश्चित करने के प्रयोजन और उद्देश्य के लिए है । न्यायालय को धारा 88 के अधीन दिया गया विवेकाधिकार ऐसे किसी व्यक्ति को, जो न्यायालय में उपस्थित है, कोई अधिकार प्रदत्त नहीं करता बल्कि यह न्यायालय को दी गई ऐसी शक्ति है जिससे कि उसकी उपस्थिति सुकर बनाई जा सके, जिससे स्पष्ट रूप से उपदर्शित होता है कि "मे" शब्द का प्रयोग वैवेकिक है और यह न्यायालय पर निर्भर करता है कि वह जब भी स्थिति की मांग हो, अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करे । इसके अलावा, यह उल्लेख करना भी सुसंगत है कि धारा 88 में प्रयुक्त "कोई व्यक्ति" शब्दों का व्यापक अर्थान्वयन किया जाना है, जिसके अंतर्गत ऐसे व्यक्ति शामिल हो सकते हैं जो मामले में अभियुक्त भी नहीं है और वे साक्षी के रूप में हाजिर हुए हैं ।

24. अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने दिल्ली उच्च न्यायालय के दो निर्णयों के प्रति निर्देश किया है, अर्थात्, **न्यायालय, स्वप्रेरणा से** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो**[1] । उपर्युक्त मामले में, न्यायालय द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173 और धारा 170 के संदर्भ में कतिपय साधारण निदेश जारी किए गए थे । उक्त मामला ऐसा मामला नहीं था जिसमें ऐसा विवाद्यक, जो दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 से संबंधित प्रस्तुत मामले में उद्भूत हुआ है, अंतर्वलित था । **संजय चतुर्वेदी** बनाम **राज्य**[2] वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय का पश्चात्वर्ती निर्णय भी एक ऐसा मामला था जिसमें **न्यायालय, स्वप्रेरणा से** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** (उपर्युक्त) वाले मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय के पूर्ववर्ती निर्णय का अनुसरण किया गया था । उक्त मामले में भी धारा 88 का किसी भी रीति में उस प्रकार निर्वचन अंगीकृत नहीं किया गया था, जैसा कि अपीलार्थी द्वारा दलील दी गई है ।

25. दिल्ली उच्च न्यायालय के एक अन्य निर्णय द्वारा, जो कि तारीख 23 मई, 2011 को विनिश्चित **संजय चन्द्रा** बनाम **केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो** वाले मामले में 2011 के जमानत आवेदन सं. 509 के संबंध में था, विद्वान् अपर महासालिसिटर द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन शक्ति के संबंध में किए गए निवेदन को समर्थन मिलता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 में प्रयुक्त "मे" शब्द आज्ञापक नहीं है और यह एक न्यायिक

---

[1] (2003) 109 दिल्ली ला टाइम्स 494.

[2] (2006) 132 दिल्ली ला टाइम्स 692.

विवेकाधिकार का मामला है । निर्णय का पैरा 20, 21 और 22 निम्नलिखित रूप में है :–

"20. अभियुक्त संजय चन्द्रा की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री राम जेठमलानी और श्री के. टी. एस. तुलसी, अभियुक्त विनोद गोयनका की ओर से उपस्थित होने वाले ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री मुकुल रोहतगी, अभियुक्त गौतम दोषी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री सोली सोराबजी और श्री रंजीत कुमार, अभियुक्त हरी नायर की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री राजीव नायर और अभियुक्त सुरेन्द्र पिपारा की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ अधिवक्ता श्री नीरज किशन कौल ने प्रारंभ में यह दलील दी है कि विद्वान् विशेष न्यायाधीश का तारीख 20 अप्रैल, 2011 का वह आदेश, जिसके द्वारा याचियों की जमानत नामंजूर की गई थी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधिदेश का अतिक्रमणकारी है । यह दलील दी गई है कि स्वीकृततः याचियों को न तो अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार किया गया था और न ही दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 170 के अधीन यथा-प्रकल्पित आरोप पत्र के साथ अभिरक्षा में पेश किया गया था । इसलिए, विचारण न्यायालय को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 को ध्यान में रखते हुए, प्रतिभुओं सहित या उनके बिना बंधपत्र की ईप्सा करके याचियों को जमानत पर रिहा कर देना चाहिए था । अतः, इस बात पर जोर दिया गया कि केवल इसी आधार पर याची जमानत के लिए हकदार हैं ।

21. याचियों द्वारा जो निर्वचन करने की ईप्सा की गई है वह भ्रामक है और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के गलत पठन पर आधारित है, जिसे निम्न प्रकार उद्धृत किया जाता है –

"**88. हाजिरी के लिए बंधपत्र लेने की शक्ति** -- जब कोई व्यक्ति, जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए किसी न्यायालय का पीठासीन अधिकारी समन या वारंट जारी करने के लिए सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित है तब वह अधिकारी उस व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह उस न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसको मामला विचारण के लिए अंतरित किया जाता है, अपनी हाजिरी के लिए बंधपत्र, प्रतिभुओं सहित या रहित, निष्पादित करे ।"

22. उपर्युक्त का पठन करने पर यह स्पष्ट होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 द्वारा न्यायालय को अपने न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग करते हुए ऐसे किसी व्यक्ति से, जो न्यायालय में उपस्थित है, हाजिर होने के लिए बंधपत्र की ईप्सा करने के लिए सशक्त किया गया है । इस धारा में यह उपबंध भी किया गया है कि उपर्युक्त शक्ति अनिर्बंधित नहीं है और इसका प्रयोग केवल ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध किया जा सकता है जिनकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए जमानत आवेदन सं. 508/2011, 509/2011, 510/2011, 511/ 2011 और 512/2011, पृष्ठ 21/34 में न्यायालय समन या वारंट जारी करने के लिए सशक्त है । इस धारा में प्रयुक्त शब्द 'उस व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह बंधपत्र निष्पादित करे' ऐसे किसी व्यक्ति के लिए हैं, जो न्यायालय में उपस्थित है । 'मे' शब्द का प्रयोग इस बात का सूचक है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 आज्ञापक नहीं है और यह न्यायालय के न्यायिक विवेकाधिकार का मामला है । "कोई व्यक्ति" शब्द इस बात के सूचक हैं कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन परिभाषित न्यायालय की शक्ति केवल विनिर्दिष्ट रूप से अभियुक्तों के संबंध में नहीं है बल्कि इसका प्रयोग अन्य प्रवर्ग के व्यक्तियों के विरुद्ध भी किया जा सकता है जैसे कि ऐसा साक्षी, जिसकी न्यायालय में उपस्थिति जांच या विचारण के प्रयोजनार्थ आवश्यक समझी जाए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 का सावधानीपूर्वक पठन करने पर यह स्पष्ट होता है कि यह न्यायालय की शक्ति को परिभाषित करने वाला एक साधारण उपबंध है किन्तु इसमें इस संबंध में उपबंध नहीं है कि इस वैवेकिक शक्ति का प्रयोग किस प्रकार और किस रीति में किया जाना है । याची गैर-जमानतीय अपराध कारित करने के अभियुक्त हैं । अतः, जमानत के लिए उनका मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अंतर्गत आता है, जो कि गैर-जमानतीय अपराधों के मामलों में किसी अभियुक्त को जमानत मंजूर करने संबंधी विनिर्दिष्ट उपबंध है । अतः, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 और धारा 437 का संयुक्त रूप से पठन करने से यह स्पष्ट होता है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 एक स्वतंत्र धारा नहीं है और यह दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 437 के अध्यधीन है । अतः, मुझे इस दलील में कोई सार प्रतीत नहीं होता है कि याचियों को जमानत देने से इनकार करने वाला विद्वान् विशेष न्यायाधीश का आदेश दंड

प्रक्रिया संहिता की धारा 88 का अतिक्रमणकारी होने के कारण अवैध है ।"

26. इस संदर्भ में जो एक अन्य निर्णय सुसंगत है, वह **डा. आनन्द देव सिंह** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में पटना उच्च न्यायालय का निर्णय है । इस मामले में पटना उच्च न्यायालय ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 पर विचार किया था, जहां पैरा 18 में निम्नलिखित रूप में अभिनिर्धारित किया गया है :--

> "18. मेरी सुविचारित राय में, संहिता की धारा 88 एक समर्थकारी उपबंध है, जो कि मजिस्ट्रेट में यह विवेकाधिकार निहित करता है कि वह उक्त धारा के अधीन जमानतीय मामलों या तुच्छ मामलों में किसी व्यक्ति को केवल हाजिरी के लिए बंधपत्र निष्पादित करने की मांग संबंधी अपनी शक्ति का प्रयोग करे और गंभीर अपराधों की दशा में इसका अवलंब नहीं लिया जा सकता है । संहिता की धारा 436 में स्वतः यह उपबंधित है कि केवल जमानतीय अपराधों के मामलों में ही बंधपत्र की मांग की जाए ।"

27. इस न्यायालय को **मधु लिमये और एक अन्य** बनाम **वेद मूर्ति और अन्य**[2] वाले मामले में दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 91 पर विचार करने का अवसर मिला, जो कि 1973 की संहिता की वर्तमान धारा 88 के समरूप है और धारा 91 के संदर्भ में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की गई थीं :–

> "..... वास्तव में, धारा 91 ऐसे व्यक्ति को लागू होती है जो कि न्यायालय में उपस्थित है और वह इसलिए मुक्त है क्योंकि इसमें न्यायालय के समक्ष किसी अन्य दिवस को उसे हाजिर होने के लिए बाध्य होने की बात कही गई है । इससे यह दर्शित होता है कि वह व्यक्ति इस संबंध में स्वतंत्र कर्ता होना चाहिए कि चाहे वह हाजिर हो अथवा नहीं । यदि कोई व्यक्ति पहले ही गिरफ्तारी और अभिरक्षा में है, जैसे कि याची थे, तो उनकी हाजिरी उनकी इच्छा पर निर्भर नहीं थी बल्कि उस व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर थी जिसकी अभिरक्षा में वे थे । अतः, यह धारा अनुपयुक्त थी और मामले के समर्थन में उद्धृत किया गया निर्णय गलत रूप में विनिश्चित किया गया था जैसा कि

---

[1] (2000) 2 पटना ला जर्नल रिपोर्ट्स 686.

[2] (1970) 3 एस. सी. सी. 739.

विशेष न्यायपीठ द्वारा अभिनिर्धारित किया गया था ..... ।"

28. अपीलार्थी द्वारा जिस एक अन्य निर्णय का अवलंब लिया गया है कि वह **अरुण शर्मा** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय का निर्णय है । उक्त मामले में, पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने धन-शोधन निवारण अधिनियम की धारा 65 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 पर विचार किया । उपर्युक्त संदर्भ में, पैरा 11 में निम्न प्रकार मत व्यक्त किया गया है :–

> "11. इन्हीं सिद्धांतों के आधार पर, धन-शोधन निवारण अधिनियम में दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 से असंगत किसी बात के अभाव में, जब कोई व्यक्ति समन या वारंट द्वारा आदेशिका जारी करने के अनुसरण में धन-शोधन निवारण अधिनियम से संबंधित विशेष न्यायालय के समक्ष स्वेच्छया हाजिर होता है और न्यायालय के समक्ष आगे हाजिर होने के लिए बंधपत्र प्रस्तुत करने की प्रस्थापना करता है तब ऐसा बंधपत्र प्रस्तुत करने संबंधी उसके आवेदन पर किसी प्रकार से विचार करना आवश्यक रूप से धन-शोधन निवारण अधिनियम की धारा 65 के साथ पठित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 द्वारा शासित होगा । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 निम्नलिखित रूप में है –
>
> > '88. हाजिरी के लिए बंधपत्र लेने की शक्ति – जब कोई व्यक्ति, जिसकी हाजिरी या गिरफ्तारी के लिए किसी न्यायालय का पीठासीन अधिकारी समन या वारंट जारी करने के लिए सशक्त है, ऐसे न्यायालय में उपस्थित है तब वह अधिकारी उस व्यक्ति से अपेक्षा कर सकता है कि वह उस न्यायालय में या किसी अन्य न्यायालय में, जिसको मामला विचारण के लिए अंतरित किया जाता है, अपनी हाजिरी के लिए बंधपत्र, प्रतिभुओं सहित या रहित, निष्पादित करे ।'
>
> यह धारा 88 (जो कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 91 के तदनुरूप है) ऐसे व्यक्ति के मामले में लागू नहीं होगी जिसकी हाजिरी उसकी अपनी इच्छा पर निर्भर नहीं है बल्कि जिसे प्राधिकारियों द्वारा अभिरक्षा में लाया जाता है, जैसा कि माननीय उच्चतम न्यायालय की संविधान पीठ ने मधु लिमये **बनाम** वेद मूर्ति (ए. आई. आर. 1971 एस. सी. 2481) वाले मामले में अभिनिर्धारित किया है, जिसमें यह

---

[1] (2016) 3 आर. सी. आर. (दांडिक) 883.

मत व्यक्त किया गया था कि –

> '..... वास्तव में, धारा 91 ऐसे व्यक्ति को लागू होती है जो कि न्यायालय में उपस्थित है और वह इसलिए मुक्त है क्योंकि इसमें न्यायालय के समक्ष किसी अन्य दिवस को उसे हाजिर होने के लिए बाध्य होने की बात कही गई है । इससे यह दर्शित होता है कि वह व्यक्ति इस संबंध में स्वतंत्र कर्ता होना चाहिए कि चाहे वह हाजिर हो अथवा नहीं । यदि कोई व्यक्ति पहले ही गिरफ्तारी और अभिरक्षा में है, जैसे कि याची थे, उनकी हाजिरी उनकी इच्छा पर निर्भर नहीं थी बल्कि उस व्यक्ति की इच्छा पर निर्भर थी जिनकी अभिरक्षा में वे थे..... ।'

अतः, इस प्रकार की स्थिति में जहां अभियुक्त व्यक्तियों को धन-शोधन निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था और उन्हें संज्ञान लेने के लिए अभिरक्षा में पेश नहीं किया गया था वहां विचारण न्यायालय के समक्ष अभियुक्त व्यक्ति द्वारा अपनी इच्छा से हाजिर होने पर आगे हाजिरी के लिए बंधपत्र प्रस्तुत करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 लागू होगी ।"

29. प्रस्तुत मामला ऐसा मामला नहीं है जहां अभियुक्त एक मुक्त अभिकर्ता था कि वह हाजिर हो अथवा नहीं । उसके विरुद्ध पहले ही गैर-जमानतीय वारंट जारी किए गए थे तथा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और 83 के अधीन कार्यवाही भी संस्थित की गई थी । मामले को इस दृष्टि से देखते हुए, वह धारा 88 के फायदे का हकदार नहीं था ।

30. पंजाब-हरियाणा वाले मामले में, उच्च न्यायालय ने **मधु लिमये** बनाम **वेद मूर्ति** (उपर्युक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया और यह अभिनिर्धारित किया कि धारा 88 लागू होगी क्योंकि अभियुक्त व्यक्तियों को धन-शोधन निवारण अधिनियम की धारा 19 के अधीन अन्वेषण के दौरान गिरफ्तार नहीं किया गया था और संज्ञान लेने के लिए उन्हें अभिरक्षा में नहीं लिया गया था । पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने जिस बात को अनदेखा कर दिया वह यह है कि इस न्यायालय ने उसी पैरा में यह मत व्यक्त किया था "इससे यह दर्शित होता है कि वह व्यक्ति इस बारे में मुक्त कर्ता होना चाहिए कि वह हाजिर हो

अथवा नहीं" । जब अभियुक्त को न्यायालय में हाजिर होने के लिए गिरफ्तारी-वारट जारी किया गया था और दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 82 और धारा 83 के अधीन कार्यवाही संस्थित की गई थी तब उसे न्यायालय में हाजिर होने या न होने के लिए मुक्त अभिकर्ता अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है । अतः, हमारा यह मत है कि पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय ने उपर्युक्त मामले में धारा 88 को सही रूप में लागू नहीं किया है ।

31. अतः, हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि धारा 88 में प्रयुक्त 'मे' शब्द न्यायालय को इस संबंध में विवेकाधिकार प्रदान करता है कि वह न्यायालय में हाजिर होने वाले अभियुक्त व्यक्ति से बंधपत्र स्वीकार करे अथवा नहीं । केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय, दोनों ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग न करने के लिए अकाट्य कारण दिए हैं । हम केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश तथा उच्च न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए अपनाए गए दृष्टिकोण में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं कि अभियुक्त दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके रिहा किए जाने का हकदार नहीं था । अतः, हम उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय में कोई त्रुटि नहीं पाते हैं ।

32. अपीलार्थी की ओर से विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री मुकुल रोहतगी ने **दाताराम सिंह** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य और एक अन्य**[1] (2018 की दांडिक अपील सं. 227) वाले मामले में इस न्यायालय तारीख 6 फरवरी, 2018 के हाल ही के निर्णय का अवलंब लिया । अपीलार्थी के विद्वान् काउन्सेल ने यह दलील दी है कि इस न्यायालय ने जमानत मंजूर करने या उससे इनकार करने से संबंधित सिद्धांतों को विस्तारपूर्वक स्पष्ट किया है । इस न्यायालय ने पैरा 6 और पैरा 7 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की हैं :–

> "6. जमानत से संबंधित उपबंध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को नीकेश ताराचंद शाह **बनाम** भारत संघ (2017) 13 स्केल 609 वाले मामले में दिए गए हाल ही के विनिश्चय में विस्तृत और सुबोधगम्य रूप से स्पष्ट किया गया है, जिसमें मैग्ना कार्टा के समय का उल्लेख किया गया है । उस विनिश्चय में, गुरबख्श सिंह सिब्बिया **बनाम** पंजाब राज्य (1980) 2 एस. सी. सी. 565 वाले मामले के प्रति निर्देश किया गया है, जिसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि बहुत

[1] (2018) 3 एस. सी. सी. 22.

पहले नागेन्द्र **बनाम** किंग एम्परर ए. आई. आर. 1924 कलकत्ता 476 वाले मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि जमानत को दंड के रूप में रोका नहीं जाना है । एम्परर **बनाम** हचिन्सन ए. आई. आर. 1931 इलाहाबाद 356 वाले मामले के प्रति भी निर्देश किया गया था जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था कि जमानत मंजूर करना नियम है और उससे इनकार करना अपवाद है । अतः जमानत से संबंधित उपबंध प्राचीन है और जमानत से संबंधित उपबंध का उदार निर्वचन करना लगभग एक शताब्दी पुराना है जो कि औपनिवेशिक काल का है ।

7. तथापि, हमारे कहने का यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि जमानत प्रत्येक मामले में मंजूर की जानी चाहिए । जमानत मंजूर करना या उससे इनकार करना संपूर्णतः उस न्यायाधीश के विवेकाधिकार के भीतर आता है जो मामले की सुनवाई कर रहा है और यद्यपि वह विवेकाधिकार निरंकुश है तथापि, इसका प्रयोग न्यायसम्मत रूप से और मानवीय रीति में और सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए । इसके अलावा, जमानत मंजूर करने से संबंधित शर्तें इतनी कठोर नहीं होनी चाहिए जिससे कि उनका अनुपालन करना अक्षम हो, जिससे जमानत मंजूर करना अवास्तविक हो जाए ।"

33. उपर्युक्त मामले के तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि विचारण न्यायालय तथा उच्च न्यायालय को अपीलार्थी को जमानत मंजूर करने के अपने विवकाधिकार का प्रयोग करना चाहिए था । इस न्यायालय ने, उपर्युक्त परिस्थितियों में उस मामले में के अपीलार्थी को जमानत मंजूर कर दी । इस न्यायालय द्वारा जमानत मंजूर करने या उससे इनकार करने के संबंध में यथा-अधिकथित प्रतिपादना के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है जो कि सुस्थापित हैं । जैसा कि इस न्यायालय द्वारा उपर्युक्त मामले में अधिकथित किया गया है, जमानत मंजूर करने संबंधी विवेकाधिकार का प्रयोग न्यायसम्मत रूप से और मानवीय रीति में तथा सहानुभूतिपूर्वक किया जाना चाहिए ।

34. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउन्सेल श्री मुकुल रोहतगी ने यह निवेदन किया है कि चूंकि अपीलार्थी ने केन्द्रीय अन्वेषण ब्यूरो के विशेष न्यायाधीश के समक्ष भी बंधपत्र स्वीकार करके उसे स्वतंत्र करने का अनुरोध किया है इसलिए अपीलार्थी को जमानत पर छोड़ दिया जाए । उन्होंने आगे यह निवेदन किया है कि

अपीलार्थी ऐसा व्यक्ति है जो कि 60 प्रतिशत निशक्त है । उन्होंने आगे यह निवेदन किया है कि जिस हानि का प्रथम इत्तिला रिपोर्ट में अभिकथन किया गया है वह सुरक्षित है और यह न्यायालय अपीलार्थी की जमानत मंजूर करने में अपनी अधिकारिता का प्रयोग कर सकता है ।

35. प्रस्तुत कार्यवाही में दो ऐसे कारण हैं जिसके कारण हम अपीलार्थी के इस अनुरोध को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि अपीलार्थी की जमानत के मामले पर विचार किया जाए । प्रथमतः, इस न्यायालय ने पूर्ववर्ती दो अवसरों पर अपीलार्थी को विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए आवेदन करने की स्वतंत्रता प्रदान की थी और अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के समक्ष जमानत के लिए कोई आवेदन फाइल नहीं किया है और उसने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 88 के अधीन बंधपत्र स्वीकार करके उसे रिहा करने पर जोर दिया है । द्वितीयतः, इस मामले के तथ्यों के आधार पर, सर्वप्रथम विचारण न्यायालय को अपीलार्थी की जमानत मंजूर करने संबंधी प्रार्थना पर विचार करना है । अतः, हमारा यह मत है कि अपीलार्थी जैसे ही कोई जमानत आवेदन फाइल करता है, विचारण न्यायालय द्वारा उस पर निःशक्तता संबंधी उसके दावे और अन्य सुसंगत आधारों पर विचार करने के पश्चात्, जिन पर अपीलार्थी द्वारा जोर दिया जाता है या उसके समक्ष जोर दिया जा सकता है, तुरंत विचार किया जाएगा ।

36. इन मताभिव्यक्तियों के साथ, इस अपील का निपटारा किया जाता है ।

तद्नुसार अपील का निपटारा किया गया ।

ग्रो.